ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 196-201
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-9, No.-I, Issues-X YEAR- June -2018

नक्सली आतंक व भारतीय सुरक्षा : चुनौतिया एवं विकल्प

प्रो0 (डॉ0) सतीश चन्द्र पाण्डेय
रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर (उ0प्र0) भारत

भारत में नक्सलवाद (Maoism) या माओवादी आंदोलन एक गंभीर आंतरिक सुरक्षा समस्या बन चुका है, जो भारतीय राज्य के लिए बड़ी चुनौती उत्पन्न कर रहा है। यह आंदोलन मुख्य रूप से आदिवासी क्षेत्रों में फैला हुआ है, जहां गरीब, शोषित और उपेक्षित समुदायों के लोग असमानता, भूख, बेरोज़गारी और अन्य सामाजिक समस्याओं से जूझ रहे हैं। नक्सलवाद का उद्देश्य भारतीय राज्य की सत्ता को चुनौती देना और एक नए समाज की स्थापना करना है, जिसमें आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय हो। इस शोध पत्र का उद्देश्य नक्सली आतंकवाद की उत्पत्ति, इसके कारणों, प्रभावों और भारतीय सुरक्षा बलों के सामने आने वाली चुनौतियों पर प्रकाश डालना है, साथ ही इस समस्या से निपटने के लिए प्रभावी रणनीतियों और विकल्पों पर चर्चा करना है।

माँओत्से तुंग के विचारधारा से प्रेरित नक्सलवाद का आरंभ 1967 में पश्चिम बंगाल के नक्सलबाड़ी गांव से हुआ था, जब तत्कालीन सरकार द्वारा भूमिहीन किसानों की समस्याओं को अनदेखा किया गया और जमीन मालिकों की तरफदारी की गई। इसका परिणाम हिंसक आंदोलन के रूप में सामने आया। बाद में यह आंदोलन माओवादी विचारधारा से प्रेरित हुआ और धीरे–धीरे आदिवासी क्षेत्रों में फैलने लगा। किसानों द्वारा भूमि सम्बन्धी मामलों को लेकर विद्रोह में जमीदारों द्वारा सताये गये भूमिहीन एवं जातिप्रथा के शिकार लोग भी कूद पड़े। भू–अपहरण, फसलों को काट लेना, हिंसा, आतंक, लूटपाट आगजनी, गोली मारने की घटनाओं के कारण कानून एंव पुलिस व्यवस्था पूर्णता समाप्त हो गयी। अव्यवस्था एवं भ्रम की स्थिति ने स्थानीय विद्रोही किसानों को प्रोत्साहित किया और वे समान्तर सरकार कायम करने में सफल हो गये। बंगाल से उभरे इस आन्दोलन का प्रभाव आन्ध्रप्रदेश, केरल एवं उड़ीसा तक फैल गया। मेडिकल एवं इंजीनियरिंग के सैकड़ों छात्र पढ़ाई छोड़कर इस आन्दोलन में कूद पड़े। नक्सलियों की सुदृढ़ता का स्वरूप सन् 2000 में उत्तर–प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, आन्ध्रप्रदेश में बड़े पैमाने में हिंसा के रूप में देखने को मिला और सुरक्षाबलों से मुकाबला करने के लिए गुरिल्ला आर्मी का गठन किया गया। वर्ष 2001 में नक्सलियों ने माओवादी संगठनों के साथ मिलकर एक समन्वयक समिति बनाकर दक्षिण एशिया में आन्दोलन उग्र करने का निर्णय लिया और वर्ष 2004 में पीपुल्स वार ग्रुप और माओवादी कम्युनिस्ट सेन्टर का विलय होने के बाद कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इण्डिया (माओवादी) अस्तित्व में आने से आतंक फैलाने की क्षमता की दृष्टि से नक्सली भी तालिबान और लिट्टे की तर्ज पर काम करने लगे हैं। उनके हथकंडों और साजिशों में इन दोनों आतंकवादी संगठनों की रणनीति का ही समावेश है। लिहाजा छत्तीसगढ़ के दंतेवाड़ा और बस्तर क्षेत्रों को अब भारत में नक्सलवाद की 'स्वात घाटी' कहा जाने लगा है।

वहाँ के एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी के मुताबिक बस्तर का यह घना इलाका इतना दुर्गम है कि वहाँ से नक्सलियों को खदेड़ पाना स्वात घाटी से तालिबान को निकालने से कहीं ज्यादा मुश्किल है। पुलिस की सबसे बड़ी दिक्कत है कि वह अभी तक यह आकलन नहीं कर पाई है कि नक्सलियों की कुल संख्या और उनके पास मौजूदा गोला–बारूद की मात्रा क्या है। नक्सल प्रभावित क्षेत्रों से पर्याप्त खुफिया सूचनाएँ भी मिल पाना दूभर होता जा रहा है। नक्सलवादी गुप्तचरों के साथ कितना क्रूर बरताव करते हैं इसका उदाहरण उड़ीसा में गुप्तचर अधिकारी के अपहरण और गला काटकर उसकी हत्या से ही मिल जाता है।

माओवादियों का दुःसाहस इतना बढ़ चुका है कि जब भारतीय वायुसेना ने उनकी ताकत और मौजूदगी का पता लगाने के लिए हवाई सर्वेक्षण शुरू किया तो उन्होंने एक हेलीकॉप्टर को भी निशाना बनाया था। उसमें एक फ्लाइट सार्जेंट मारा गया। अब मानव–रहित हवाई यानों (यू0ए0वी0) के जरिये नक्सलियों की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए फिर से प्रयास किये जा रहे हैं। वे कितने बर्बर हैं, इसका उदाहरण इस घटना से भी मिलता है कि जब पुलिस ने बारूदी सुरंगों के विस्फोट के कारण मारे गये लोगों के शवों को ले जाने के लिए नागरिक हेलीकॉप्टरों का इस्तेमाल किया तो उन पर भी हमला किया गया। ऐसी ही दूसरी घटना उनके इलाके में फँसे सुरक्षा बलों को निकालने वाले हेलीकॉप्टर के साथ भी घटी। कुछ समय पहले आन्ध्र प्रदेश की सीमा के निकट बस्तर में एक छोटा विमान दुर्घटनाग्रस्त हो गया था। वह इलाका नक्सल प्रभावित था। 'लाल आतंकवादियों' ने खोजी दल को वहाँ चार माह तक घुसने नहीं दिया। उन्हें डर था कि कहीं

अनुरूपी लेखक

उनके ठिकानों और भण्डार गृहों का पता न चल जाये। बहुत मुश्किल से उस विमान का मलबा वहाँ से निकाला जा सका।1

नक्सलियों के कब्जे वाले बस्तर इलाके के जंगलों में चप्पे–चप्पे पर बारूदी सुरंगें बिछी हैं। उन्होंने वहाँ कंक्रीट के भूमिगत बंकर बना रखे हैं। जंगल इतने घने हैं कि आकाश से वहाँ चल रही गतिविधियों का पता लगा पाना लगभग नामुमकिन है। करीब 70 प्रतिशत इलाका नक्सलियों के कब्जे में है। सिर्फ छत्तीसगढ़ में ही 10,000 से ज्यादा सशस्त्र माओवादी सक्रिय हैं। सैटेलाइट मोबाइल फोन, रॉकेट लांचर और अत्याधुनिक हथियारों से युक्त आतंकवादी इस इलाके में अपनी समानांतर सरकार चलाते हैं।

श्रीलंका के आतंकवादी संगठन लिट्टे से प्रेरणा लेते हुए नक्सली भी बच्चों और महिलाओं का खुलकर इस्तेमाल कर रहे हैं। वे अपनी आतंकी गतिविधियों के संचालन में उनका जमकर इस्तेमाल कर रहे हैं। उन्होंने दस साल की उम्र वाले बच्चों को भी नहीं बख्शा है। उन्हें जंगलों में बंदूक चलाना सिखाया जाता है। खासतौर पर बच्चों का इस्तेमाल 'टोह' लेने के लिए किया जाता है। जब नक्सली छापामार सुरक्षा बलों पर घात लगाकर हमले करते हैं तो घटनास्थल से कुछ दूर पहले इन बच्चों की मदद से यह पता लगया जाता है कि वहाँ से कौन सी गाड़ी गुजरी है। उसी के अनुसार वे विस्फोट कर सुरक्षा बलों के वाहनों को अपना निशाना बनाते हैं। अक्सर पुलिस के साथ होने वाली मुठभेड़ में बच्चे भी गोलीबारी का शिकार होकर अपनी जिन्दगी गँवा देते हैं।

गैरतलब यह है कि एशिया के तमाम देशों में आतंकवादी संगठन बच्चों की भर्ती कर उनके जरिये सशस्त्र संघर्ष चला रहे हैं। अफगानिस्तान, म्याँमार, इन्डोनेशिया, लाओस, फिलीपींस, नेपाल, श्रीलंका आदि के साथ–साथ अब भारत में भी 'बाल सैनिकों' का इस्तेमाल जारी है। तालिबान की तरह माओवादी भी बच्चों को प्रेरित करने के लिए विशेष रणनीति अपनाते हैं। उन्हें पुलिस के जुल्मों की झूठी कहानियाँ सुनाई जाती हैं। उन्हें बरगलाया जाता है कि पुलिस वाले आदिवासी महिलाओं को लगातार बलात्कार का शिकार बनाते हैं। आम–तौर पर इन कहानियों में जिन इलाकों का जिक्र किया जाता है, वे काफी दूर के होते हैं। लिहाजा उनकी पुष्टि की सम्भावनाएँ भी न के बराबर होती हैं।

ऐसा नहीं है कि सारी ही भर्तियां दबाव या डर में की जाती हों। जिन क्षेत्रों में नक्सली सक्रिय हैं, वे क्षेत्र बेहद पिछड़े हैं। वहाँ न तो सड़कें हैं, न स्कूल और न ही बिजली। उन जंगली क्षेत्रों में रोजगार की भी सम्भावनाएँ नहीं हैं। भुखमरी और कुपोषण के कारण बड़ी तादाद में बच्चे और उनके माँ बाप माओवाद की ओर आकर्षित होते हैं। उन्हें लगता है कि वे कमोबेश दो वक्त की रोटी और कपड़ा तो देंगे। माओवादी अपने इलाकों में तालिबान की तरह सरकारी स्कूल बन्द करवा चुके हैं। मजबूरन बच्चों को आतंक की पाठशाला में जाना पड़ता है, जो वास्तव में प्रशिक्षण शिविर हैं। वहाँ बच्चों को बताया जाता है कि सरकार उनकी सबसे बड़ी दुश्मन है। उन्हें उनके कथित अधिकारों की जानकारी दी जाती है और जन–संघर्ष के लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर देने के लिए उकसाया जाता है।

दरअसल, पुलिस की समस्या है कि वह इन 'बाल आतंकवादियों' से कैसे निपटे ? पूरी दुनिया में इस मुद्दे पर जोरदार बहस चल रही है कि क्या युद्ध और आतंक के बाल अपराधियों को सजा दी जाये ? अन्तर्राष्ट्रीय कानून में ऐसे अपराधों में लिप्त बच्चों को सजा न देने का कोई प्रावधान नहीं है। हालांकि बाल अधिकरों पर संयुक्त राष्ट्र संधि (कन्वेंशन) के अनुच्छेद 37 में यह कहा गया है कि बच्चों को मौत या आजीवन कारावास की सजा नहीं दी जा सकती। लिट्टे की तरह माओवादी भी बड़ी तादाद में महिलाओं का इस्तेमाल कर रहे हैं। गृह मंत्रालय के एक आकलन के मुताबिक, उनकी कुल संख्या का 40 प्रतिशत महिलायें हैं। उनमें अधिकांश आदिवासी, गरीब और अशिक्षित हैं। हाल ही में कुछ चौंकाने वाले तथ्य सामने आये हैं। बड़ी संख्या में शिक्षित और समाज के मध्यम एवं कुलीन वर्ग से सम्बन्ध रखने वाली महिलायें भी नक्सली संघर्ष का हिस्सा बनती जा रही हैं। 'जन युद्ध' व भ्रष्ट सरकारी मशीनरी के नाम पर छेड़े गये इस सशस्त्र संघर्ष के प्रति जो पढ़ी–लिखी महिलायें आकर्षित हो रही हैं, उनमें कानून की स्नातक, डॉक्टर, इंजीनियर, आई0टी0 प्रोफेशनल आदि भी शामिल हैं। ये देश के विभिन्न प्रदेशों से सम्बन्ध रखती हैं, लेकिन भ्रष्ट सरकारी तंत्र के सफाये के नाम पर एकजुट हो रही हैं।[2]

क्योंकि भूमण्डलीय भारत में आम जनता सरकार की संवेदना एवं सरोकार का विषय नहीं रह गई है। समाज का वंचित वर्ग निरन्तर हाशिये पर धकेला जा रहा है। विदित है कि भूमण्डलीकरण हाशियाकरण को प्रोत्साहित कर रहा है। भूमण्डलीकरण और हाशियाकरण एक ही परिघटना की प्रति–छवियाँ हैं।[3] भारत के 35 करोड़ विकट दरिद्रता में जीने वाले गरीबों, 10 करोड़ बेरोजगारों, 40 करोड़ निरक्षरों, 5 करोड़ बाल–श्रमिकों और 16 करोड़ विकलांगों की कोई चर्चा नहीं करता है।[4] राज्यसत्ता न केवल इन्हें त्याज्य मानने लगी है बल्कि विकास के मौजूदा प्रचलित मॉडल से प्रभावित लोगों के प्रति असंवेदनशील हो गई है। बात चाहे विश्व बैंक द्वारा समर्थित डेम–परियोजना में विस्थापित 33 से 55 मिलियन लोगों की हो या फिर विश्व की भयंकर औद्योगिक दुर्घटना भोपाल में मृत तैंतीस हजार लोगों को न्याय प्रदान करने की।[5]

1. भूमण्डलीकरण ऐसी परिस्थितियाँ तैयार करता है कि जिसके कारण लाखों–करोड़ो लोग स्वयं को हाशिये पर

पाकर अवांछित और परित्यक्त समझने लगते हैं। भारत में भूमण्डलीकरण के प्रभावस्वरूप हो रहे हाशियाकरण को कई रूपों में देखा जा सकता है। हाशियाकरण का एक चेहरा भारत का दलित और आदिवासी वर्ग है। यद्यपि दलित और आदिवासी भारत में शुरू से उपेक्षित रहे हैं, लेकिन भूमण्डलीकरण के पश्चात् राज्य अपनी संवैधानिक जिम्मेदारियों से मुंह चुरा रहा है। इसके फलस्वरूप भूमण्डलीकृत भारत में दलित व आदिवासियों की स्थिति अत्यन्त चिंताजनक होती जा रही है। 2001 की जनगणना के अनुसार, भारत में दलित और आदिवासियों की जनसंख्या 25 करोड़ हैं जिसमें 16 करोड़ 70 लाख दलित और 8 करोड़ 60 लाख आदिवासी हैं। इनमें से लगभग 80 प्रतिशत दलित आबादी गांवों में रहती है, जिनमें से आधे से अधिक भूमिहीन कृषि मजदूर हैं। आधे से अधिक निरक्षर हैं जिनके बच्चों को पढ़ने की अच्छी व्यवस्था नहीं है। देश के ग्रामीण इलाकों में करीब 70 फीसदी दलित परिवार ऐसे हैं जिनके पास जमीन नहीं है या है तो एक एकड़ से भी कम। यही नहीं, 50 फीसदी आदिवासी परिवार दिहाड़ी मजदूरी पर अपनी जीविका चला रहे हैं। इसमें 46 फीसदी दलित परिवार और 61 फीसदी आदिवासी परिवार गरीबी रेखा के नीचे जीवन–जीने के लिए अभिशप्त हैं।[6]

2. भूमण्डलीकरण में औद्योगिकीकरण की जो अंधी सनक दिखाई देती है, इसका भी भुक्तभोगी आदिवासी वर्ग बनता है। उड़ीसा और आन्ध्र प्रदेश इसका ज्वलंत उदाहरण हैं। उड़ीसा के कलिंगा में अमानुषिक बर्बर गोलीकांड में हुई 14 व्यक्तियों की मौत को भूलना बड़ा मुश्किल है। इसके अतिरिक्त स्पेशल इकोनॉमिक जोन, (सेज) जो भूमण्डलीकृत भारत का नया नारा है, में भी सदैव विस्थापन की पीड़ा आदिवासियों को ही झेलनी पड़ती है। वर्ष 1980 से 2003 तक 8,70,000 हेक्टेयर जंगल को 10,118 प्रोजेक्ट के लिए आवंटित कर दिया गया है। ऐसे ही औद्योगिकीकरण के प्रभावस्वरूप भारत में 25 से 50 मिलियन लोग विस्थापन की पीड़ा झेल रहे हैं।[7]

3. भूमण्डलीकरण के प्रभावस्वरूप हो रहे हाशियाकरण का एक प्रतीक भारत का किसान वर्ग भी है। पूरे भारतवर्ष में किसानों की आत्महत्या की घटना आम हो गई है। पंजाब का सम्पन्न किसान हो या फिर विदर्भ, तेलंगाना जैसे पिछड़े क्षेत्रों के किसान, सभी आत्मघात को प्रेरित हो रहे हैं।

स्वतंत्रता–संग्राम के दिनों में स्वामी सहजानन्द सरस्वती द्वारा किसान सभा की स्थापना और उनके द्वारा संचालन न केवल बिहार के ही वरन् अखिल भारतवर्ष के किसान आ जुटे और जमींदारी प्रथा के खिलाफ जमकर जंग की। किसान सभा कांग्रेस की एक सहयोगी धारा के रूप में रही जिसके संचालन में कांग्रेस के कई नेताओं ने अग्रणीय भूमिका निभाई देश के दूसरे प्रांतों में भी जमींदारी प्रथा का अन्त करने में किसानों और खेतिहर मजदूरों ने एक साथ मिलकर लड़ाई लड़ी, कुर्बानियाँ दी और सफलता प्राप्त की। बाद के दौर में किसानों और खेतिहर मजदूर अपने–अपने हितों की पूर्ति के लिए अलग–अलग ढंग से संघर्ष करने लगे और एक–दूसरे से दूर होते गये फलस्वरूप दोनों के हितों के बीच टकराहट शुरू हुई, जो आगे चलकर हिंसा की सीमा तक जा पहुंची। हिंसा की यह चिंगारी तेलांगना आन्दोलन में व्यापक रूप से फैली। तेलांगना आन्दोलन में किसानों और खेतिहर मजदूरों के बीच लम्बी लड़ाई चली जिसका नेतृत्व कम्युनिस्ट पार्टी ने किया, जिसमें हजारों सम्पन्न किसान और खेतिहर मजदूर मारे गये। आजादी के बाद तेलांगना आन्दोलन को कम्युनिस्ट पार्टी द्वारा वापस ले लिया गया। कुछ देर के लिए हिंसात्मक आन्दोलन ठंढ़ा सा प्रतीत होने लगा लेकिन हिंसा की यह चिंगारी नक्सलबाड़ी में 20 वीं सदी के सातवें दशक के उत्तरार्द्ध में व्यापक रूप से फूटी, देश के दूसरे हिस्सों में भी यह आन्दोलन तेजी से फैला, बिहार भी इससे अछूता नहीं रहा। इस आन्दोलन की एक खास विशेषता यह रही कि इसमें महिलाओं की भागीदारी आन्दोलन के शुरूआत के दिनों से ही होने लगी। नक्सलबाड़ी में प्रथम फायरिंग में ही सात महिलायें मारी गयी थी।

नक्सलवाद का उद्भव यद्यपि एक क्षेत्र विशेष नक्सलबाड़ी जो पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले का एक प्रखंड है, की धरती से कृषकों एवं कामगारों, खेतिहर मजदूरों के बीच मजदूरी के सवाल एवं भूमि विवाद से हुआ जो कृषि कर्म से घने रूप से जुड़ी हुई समस्याएँ हैं पर यह वहीं तक सीमित नहीं रहा। आगे बढ़कर यह भारत के राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षितिज पर भी छा गया।

कई इलाकों में शोषण अत्याचार के खिलाफ अपने जुझारू संघर्षों से इस आन्दोलन ने बेहद महत्वपूर्ण सफलतायें हासिल की, जिनसे शासक वर्ग को यह आन्दोलन इस कदर खतरनाक लगने लगा कि राज्य सत्ता के जरिये ऐसी कार्रवाईयाँ इस आन्दोलन को कुचलने के लिए चलाई गई, जैसी इन इलाकों के लोगों ने अंग्रेजों के जमाने में भी नहीं देखी थी।[8] इन अमानुषिक दमन–चक्र के चलते ये आन्दोलन कुछ समय के लिए छिन्न–भिन्न भी हो गया पर इसे कुचला नहीं जा सका और थोड़े ही दिनों बाद यह फिर जोर पकड़ने लगा खासकर बिहार और आन्ध्र प्रदेश में। मजदूरी, जमीन के पुनर्वितरण, औरतों की इज्जत, जातीय शोषण–उत्पीड़न और आदिवासियों के शोषण के सवाल पर इस आन्दोलन ने उल्लेखनीय सफलतायें हासिल की। आज बिहार, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, मध्यप्रदेश, कर्नाटक और कमोबेश हर राज्य में ये आन्दोलन फैल चुका है।[9]

सरकारी दमन चक्र के तहत बड़ी तादाद में पार्टी के लोग मारे गये। चारू मजुमदार को गिरफ्तार कर यातना दी गई जिसके चलते उनकी मौत हो गई। उनकी मौत के बाद ऐसी कोई शख्सियत नहीं रही जो सभी जिला कमेटियों को साथ इकट्ठा कर सके। इसलिए चारू मजुमदार के अनुयायी एक तरफ हो गये और जो उनकी गलतियों की ओर इशारा करते थे वे दूसरी तरफ। चूंकि दमन का दौर था तो क्षेत्रीय कमेटियों के बीच संवाद इतना आसान नहीं था,[10] कई केंद्र थे और जो बहस उस समय थी व कमोबेश कुछ परिवर्तित रूप में आज भी है।

इस समझदारी के बाद कि जो रास्ता चारू मजुमदार ने अपनाया था वो गलत था तो सवाल उभरा कि फिर सही रास्ता क्या है? लोग अलग–अलग ढंग से प्रयोग करने लगे। तो विभिन्न ग्रुप जो आज अलग–अलग हैं अलग–अलग ढंग से प्रयोग कर रहे हैं वो इसी सही रास्ते की तलाश के सवाल पर ही केंद्रित हैं। चूंकि इस सवाल का एक आम सहमति वाला रास्ता निकल नहीं पाया है इसलिए विवाद, मतभेद बने हुए हैं। कुछ लोग बिल्कुल भूमिगत काम कर रहे हैं जैसे कि 'पीपुल्स वार ग्रुप', 'पार्टी यूनिटी' और 'एम सी सी'। उनकी अपनी सफलतायें हैं। जहां सामंती दमन ज्यादा है वहां उनकी प्रासंगिकता भी है। लिबरेशन ग्रुप ने समाजवाद, सोवियत संघ वगैरह के सवाल पर जो स्थापित नक्सलवादी मान्यता थी उससे मौलिक रूप से अलग हटते हुए नई 'पोजिशन' ली और सोवियत संघ को समाजवादी देश के रूप में स्वीकार किया। फिर वह ग्रुप संसदीय प्रयोग में चला गया। साथ–साथ यह ग्रुप कई इलाकों में आन्दोलन भी चला रहा है, सशस्त्र दस्तों को कम करने की कोशिश कर रहा है। इस बाबत कई तरह की बातें सामने आ रही हैं। जैसे कभी वे जमीन के राष्ट्रीयकरण की बात करते हैं, कभी भूमि मुक्ति आन्दोलन चलाते हैं तो उन्हें भी सफलता मिली है। लेकिन उनकी सफलता भी कोई इतनी ज्यादा नहीं है कि लोग कायल हो जायें कि उनका रास्ता ही सही है। तो इस तरह दो ध्रुव हैं एक तरफ 'पीपुल्स वार', 'पार्टी–यूनिटी' और 'एम सी सी' और दूसरी तरफ 'लिबरेशन' और बीच में सिद्धान्त और रणनीति को लेकर भिन्न मत रखने वाले कई संगठन हैं।[11]

इस आन्दोलन की त्रासदी ये है कि यह इतने टुकड़ों में विखंडित हो चुका है कि त्याग और उत्सर्ग के हिसाब से बेमिसाल होने के बावजूद शोषणरहित न्यायपूर्ण व्यवस्था कायम करने के अपने लक्ष्य से कोसों दूर हैं। आज लगभग पचीस–तीस ग्रुपों में विभक्त है। हर ग्रुप ने अपने–अपने इलाकों में जनता के दुःख–दर्द दूर करने की दिशा में काफी सार्थक काम किये हैं। पर एकता का अभाव होने के चलते इस आन्दोलन की चहलकदमियाँ कोई सार्थक उपलब्धि हासिल नहीं कर पाई हैं। जहाँ तक व्यवस्था परिवर्तन का सवाल है, एकता की कमी एवं कार्यनीति में मूलभूत अन्तर के चलते यह आन्दोलन आज विभिन्न ग्रुपों की आपसी हिंसा–प्रतिहिंसा के दुश्चक्र में भी फँसा हुआ है। इसके चलते एक ओर तो इसके समर्थन में कोई खास बढ़ोत्तरी नहीं हो रही है और दूसरी ओर शासक वर्गों को राज्य सत्ता के जरिये आन्दोलन पर दमनात्मक कार्रवाईयाँ करने का अच्छा बहाना मिला हुआ है। इसलिए नक्सलवादी आन्दोलन के सामने आज सबसे बड़ी चुनौती हैं विभिन्न ग्रुपों के बीच एकता के सवाल को हल करना।

नक्सली आतंक का प्रभाव– नक्सली आतंक का भारतीय समाज और सुरक्षा व्यवस्था पर गहरा असर पड़ा है। इसके परिणामस्वरूप :

1. 'हिंसा और अस्थिरता': नक्सली हमलों के कारण असंख्य लोग मारे गए हैं, और कई सुरक्षा बलों के जवान घायल हुए हैं। नक्सलवाद की हिंसा ने आदिवासी क्षेत्रों को अस्थिर कर दिया है, जिससे सामान्य जीवन प्रभावित हुआ है।
2. 'आर्थिक विकास में रुकावट': नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में विकास कार्यों में रुकावट आती है, जिससे सामाजिक और बुनियादी सुविधाओं का अभाव बना रहता है। यह इलाके विकास के मामले में पिछड़े रहते हैं।
3. 'लोकतंत्र की स्थिरता पर खतरा': नक्सलवाद भारतीय लोकतंत्र के लिए भी खतरा बन सकता है, क्योंकि यह लोकतांत्रिक प्रक्रिया और चुनावों को बाधित करता है। इसके परिणामस्वरूप, राज्य की वैधता और उसकी कार्यक्षमता पर प्रश्न उठते हैं।
4. 'आदिवासी समुदाय का दमन': सरकार और सुरक्षा बलों की कार्रवाई के कारण आदिवासी समुदायों के बीच असंतोष बढ़ा है, जो नक्सलियों के लिए एक समर्थन आधार बनता है।

नक्सली आतंक से निपटने के विकल्प और रणनीतियाँ–

नक्सली आतंक को समाप्त करने के लिए एक समग्र और विविध दृष्टिकोण की आवश्यकता है :

1. 'सैन्य और सुरक्षा उपायों का समन्वय': नक्सलियों के खिलाफ कार्रवाई के लिए सुरक्षा बलों को एक रणनीतिक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए, जिसमें सख्त सुरक्षा उपायों के साथ–साथ मानवाधिकारों का भी सम्मान किया जाए।
2. 'आदिवासी समुदायों के साथ संवाद': नक्सली आतंक से निपटने के लिए आदिवासी समुदायों के साथ संवाद और विश्वास निर्माण जरूरी है। उन्हें सरकार की विकास योजनाओं से जोड़ना और उनके हितों का सम्मान करना आवश्यक है।
3. 'विकास कार्यों में तेजी': सरकारी योजनाओं में सुधार और विकास कार्यों को तेजी से लागू करना आवश्यक है, ताकि लोगों को रोजगार, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएं और बुनियादी सुविधाएं मिल सकें।

4. 'सामाजिक और राजनीतिक सुधार': नक्सली आतंक की जड़ें समाज में असमानता, शोषण और उपेक्षा में छिपी हैं। इन समस्याओं का समाधान सामाजिक और राजनीतिक सुधारों के माध्यम से ही संभव है।

5. 'संघीय और राज्य स्तर पर समन्वय': नक्सली आतंक के खिलाफ लड़ाई में केंद्र और राज्य सरकारों के बीच बेहतर समन्वय होना चाहिए। राज्य पुलिस और केंद्रीय सुरक्षा बलों के बीच तालमेल बढ़ाना भी आवश्यक है।12

निष्कर्ष–

1. 'नक्सलवाद का कारण:' नक्सली हिंसा का मुख्य कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक असंतुलन है। आदिवासी क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं का अभाव, गरीबी, बेरोजगारी और राज्य के प्रति अविश्वास ने नक्सलवादी समूहों के लिए जमीन तैयार की है। ये समूह स्थानीय लोगों को राज्य के खिलाफ भड़काते हैं और सरकार के खिलाफ विद्रोह करते हैं।

2. 'सुरक्षा चुनौतियाँ:' नक्सलवादी संगठन सशस्त्र संघर्ष के जरिए राज्य के नियंत्रण को चुनौती देते हैं। इनका संघर्ष असमाजिक तत्वों से लेकर उच्च–तकनीकी रणनीतियों तक विस्तारित हो गया है। छिपे हुए आधार, जंगलों में गुप्त गतिविधियाँ और सशस्त्र हमले भारतीय सुरक्षा बलों के लिए विशेष रूप से चुनौतीपूर्ण हैं।

3. 'सामाजिक और आर्थिक नुकसान:' नक्सली गतिविधियों के कारण क्षेत्रीय विकास में रुकावट, निवेश की कमी और स्थानीय लोगों का अत्यधिक शोषण हो रहा है। नक्सलवाद ने विकास कार्यों को प्रभावित किया है, जिससे आदिवासी समुदाय की स्थिति और भी खराब हो गई है। नक्सली हिंसा ने सरकारी योजनाओं को अमल में लाने में भी मुश्किलें पैदा की हैं।

4. 'सरकारी प्रतिक्रिया और विकल्प:' भारतीय सरकार ने सुरक्षा बलों द्वारा नक्सली गतिविधियों के खिलाफ कठोर कदम उठाए हैं। इसके साथ ही, विकास योजनाओं, पुनर्वास कार्यक्रमों और स्थानीय समुदायों के साथ बेहतर संवाद स्थापित करने के प्रयास भी किए गए हैं। यह महत्वपूर्ण है कि सुरक्षा बलों के साथ–साथ समाज के अन्य क्षेत्रों में भी सुधारात्मक कदम उठाए जाएं, ताकि नक्सलवाद की जड़ें कमजोर की जा सकें।

5. 'सामाजिक सशक्तिकरण:' आदिवासी समुदायों को मुख्यधारा में लाने के लिए बेहतर शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और बुनियादी सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए। नक्सलवाद को समाप्त करने के लिए सामाजिक–आर्थिक सुधार अत्यंत आवश्यक हैं। इसके अलावा, स्थानीय लोगों के साथ पारदर्शी और संवेदनशील संवाद स्थापित करने की आवश्यकता है, ताकि वे सरकार से जुड़े और नक्सलवादी संगठनों के दुष्प्रचार से बच सकें।

6. 'समझौते और पुनर्वास:' नक्सलवाद को केवल सैन्य उपायों से नहीं, बल्कि राजनीतिक और सामाजिक समाधानों के जरिए भी समाप्त किया जा सकता है। संघर्ष से थके हुए नक्सली समूहों के लिए पुनर्वास योजनाएं और आम माफी नीति लागू की जा सकती है।

7. 'नक्सली आतंकवाद का दीर्घकालिक समाधान:' नक्सलवाद की समस्या का दीर्घकालिक समाधान केवल सुरक्षा उपायों से संभव नहीं है। इसके लिए एक समग्र दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है, जिसमें राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सुधार शामिल हों। सरकार को समाज के विभिन्न वर्गों के बीच संवाद और सहयोग बढ़ाने के प्रयासों को प्राथमिकता देनी चाहिए।

अंततः हम कह सकते हैं कि नक्सली आतंकवाद भारतीय सुरक्षा के लिए एक गंभीर चुनौती है, लेकिन इसे केवल सैन्य शक्ति से नियंत्रित नहीं किया जा सकता। इसके समाधान के लिए एक संतुलित दृष्टिकोण की आवश्यकता है, जिसमें सुरक्षा बलों का सहयोग, समाज में सुधार, आदिवासी समुदायों की सशक्तिकरण, और बेहतर प्रशासनिक नीतियाँ शामिल हों। केवल इस तरह से भारत नक्सलवाद से प्रभावी रूप से निपटने में सक्षम हो सकता है और एक स्थिर, समृद्ध और शांतिपूर्ण समाज की स्थापना कर सकता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Chandra, P. (2011). India's internal security: An overview of the threat of Naxalism. Delhi: Concept Publishing Company.
2. Shah, A. (2013). The Naxalite movement in India: The long journey to revolution. New York: Routledge
3. Gupta, A., & Sharma, R. (2017). Understanding the Naxalite insurgency: A case study of its impact on Indian internal security. Journal of Security Studies,4(2),118134.https://doi.org/10.1080/20501912.2017.1310978
4. कुमार विजय, हाशिये पर खड़ा एक समाज, हिंदुस्तान, 27 मई, 2005, पृ0 8.

5. आशीष कोठारी, डेवलपमेंट हर्ट्स, द टाइम्स ऑफ इण्डिया, दिसम्बर 10, 2006, पृ0 08.
6. मोहन राम, इण्डियन कम्युनिज्म–स्प्लिट विदिन स्प्लिट, विकास पब्लिकेशन, दिल्ली, 1969, पृ0 24.
7. कौटिल्य, विखंडित नक्सली आन्दोलन में एकता की सम्भावनायें, पाक्षिक पत्रिका फिलहाल में प्रकाशित, शोध माध्यम प्रकाशन, पटना, अक्टूबर 1995, पृ0 9.
8. सेलेन दास गुप्ता, 'नक्सलवाड़ीः देन एंड नाव', मैनस्ट्रीम, वॉल्युम नं0 31 मार्च 31, 1979, पृ0 41.
9. कौटिल्य, विखंडित नक्सली आन्दोलन में एकता की सम्भावनायें, पाक्षिक पत्रिका फिलहाल में प्रकाशित, शोध माध्यम प्रकाशन, पटना, अक्टूबर 1995, पृ0 9.
10. वही पृ0 9.
11. Raghavan, v. (2015) Naxalism and challenges of internal security in India. South Asian Politics Review,23(1), 77-89.
12. National Bureau of Security Studies (2019) , Naxalism and Its Impact on India's security ;A comprehensive review.

*****